P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

भारतीय राजनीति में भाषा की भूमिका : एक अध्ययन

मीता सिंह
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
एस.डी.एम. कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
देशलपुर, बहादुरगढ़,
हरियाणा, भारत

सारांश

हमारे संविधान के अनुच्छेद 343 में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि भारत संघ की राजभाषा हिन्दी होगी। हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग व क्षेत्रीय भाषाओं की स्थिति पर सुझाव देने हेतु राष्ट्रपति द्वारा भाषा आयोग के गठन का भी प्रावधान है। यह आयोग देश की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोक सेवाओं के सम्बन्ध में अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों की उचित माँगों पर भी विचार करेगा। इसके साथ ही संविधान राज्य के विधानमण्डलों को भी यह अधिकार प्रदान करता है कि वे उस राज्य में राजकीय प्रयोजन हेतु हिन्दी या उस राज्य की क्षेत्रीय भाषा को स्वीकार कर सकते है। परस्पर सहमति से यह व्यवस्था दो या अधिक राज्य भी स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रक्रिया में भाषायी अल्पसंख्यकों के अधिकारों की पूर्ण रक्षा के भी स्पष्ट प्रावधान है।

संविधान में इन्हीं व्यवस्थाओं को क्रियान्वित करने हेतु 1955 में पहला राजभाषा आयोग बी.जी. खरे की अध्यक्षता में गठित किया गया। 1967 में राजभाषा संशोधन अधिनियम द्वारा त्रिभाषा फॉर्मूला लागू करने का सुझाव आया। इसके तहत् सरकारी सेवाओं में पत्राचार के साथ–साथ प्रतियोगी परीक्षाएँ हिन्दी, अंग्रेजी व अन्य प्रादेशिक भाषा में ली जाएगी। हिन्दी का निरन्तर विकास भी इसी प्रक्रिया का हिस्सा होगा। इन स्पष्ट प्रावधानों के होते हुए भी हमारे देश में हिन्दी भाषा के विकास में बाधाएँ निरन्तर बनी हुई है। भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन एवं दक्षिण के कुछ राज्यों में हिन्दी विरोधी आन्दोलन विचारणीय मुद्दे रहे है। भाषा के आधार पर नये राज्यों के निर्माण की माँग में ही भाषावाद की संकीर्णताएँ निहित है। किसी क्षेत्रीय भाषा का विकास हो इसमें अन्य नागरिकों को कोई आपत्ति नहीं हो सकती किन्तु क्षेत्रीय भाषा के विकास में हिन्दी को बाधक मानना व उसका हिंसक तरीकों से विरोध राष्ट्रीय अस्मिता के लिए ठीक नहीं है। 'हिन्दी साम्राज्यवाद का असुरक्षा भाव समाप्त कर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में विश्वास स्थापित करना देश की प्राथमिकता हो, जिससे त्रिभाषा फॉर्मूला' व्यावहारिक रूप धारण कर सके।

मुख्य शब्द : भारतीय राजनीति, भाषावाद, आठवीं अनुसूची, राजभाषा, त्रिभाषा सूत्र, उत्तर, दक्षिण, राज्य पुनर्गठन आयोग।

प्रस्तावना

भारत एक बहुभाषी देश है। स्वतंत्रता के उपरान्त 1951 की जनगणनानुसार भारत में 771 भाषाओं एवं स्थानीय बोलियों की विद्यमानता थी जो आज 1652 भाषा एवं बोलियों तक पहुँच चुकी है। इनमें 22 भाषाओं को 8वीं अनुसूची में शामिल कर अधिकृत भाषाओं का दर्जा दिया गया है। स्वतन्त्रता के उपरान्त इनमें प्रमुख भाषाओं को, जिसे देश की जनसंख्या का 91 प्रतिशत प्रयुक्त करता है– संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। मूल संविधान में 14 भाषाओं को प्रमुख मान्यता प्रदान की गयी। 1992 में हुए 71 वें संविधान संशोधन के पश्चात् यह संख्या 18 तथा दिसम्बर 2003 में पारित 100 वें संविधान संशोधन विधेयक में डोगरी, मैथिली, संथाली एवं बोडो को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने के बाद अब यह संख्या 22 हो गयी है।

भाषा की विविधता समाज का अनूठा अनुलक्षण है किन्तु यही विशेषता तब संकट बन जाती है जब विविध भाषा–भाषी लोगों के मध्य द्वेष उत्पन्न हो। भाषागत आधार पर संकुचित भावनाएँ दबाव गुटों का उद्भव, राज्यों की मांग तथा राजनीतिक आन्दोलन राष्ट्रीय एकता के लिए संकट उत्पन्न कर देते हैं। भाषायी आधार व विवादों के निवारण के लिए एक ऐसी सम्पर्क भाषा जो विविध भाषा–भाषी व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँध सके, आवश्यक है। हिन्दी को संघ की राजभाषा के रूप में विहित किया गया है। संविधान सभा में हिन्दी को राजभाषा के रूप में दर्जा देने के मुद्दे पर व्यापक विचार–विमर्श किया गया ।

विचार–विमर्श के पश्चात् संविधान निर्माताओं ने व्यक्त किया है कि देश की सांस्कृतिक जीवन की अनन्यता को दृढ़ करने वाले तत्वों की अभिव्यक्ति के लिए माध्यम की खोज की जाती है। हम सदियों के बाद पुनः प्राप्त इस राजनीतिक एकता के साथ–साथ भाषायी एकता भी प्राप्त करना चाहते हैं। इस एकता की प्राप्ति हेतु हम अंग्रेजी भाषा का स्थानापन्न किसी देशी भाषा को बनाना चाहते है तथा सभी प्रादेशिक भाषाओं में हिन्दी को राष्ट्रभाषा इसलिए चुना गया है क्योंकि इसके बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है।

पारिवारिक एवं क्षेत्रीय भाषाएँ कभी भी राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं ले सकती व न ही इन्हें देश की राजभाषा से कोई चुनौती महसूस होनी चाहिए। भाषायी विवधिताएँ तो समाज का एक लक्षण भर है जहाँ शारीरिक भिन्नताओं के समान ही जुबानी भिन्नताएँ पनप सके, ऐसा माहौल उत्पन्न हो। भाषायी आधार पर आन्दोलन कुछ स्वयंभू नेताओं के अस्तित्व अनुरक्षण के व्यायाम है, आम नागरिक को यह समझना और समझाना आवश्यक है। शासन का भी यह दायित्व बनता है कि वे संसाधनों, रोजगार के अवसरों का समान वितरण बिना किसी भाषायी भेदभाव के करें। सर्वत्र कानून का शासन हो, न कि भाषायी बहुसंख्यक की स्वेच्छचारिता का शासन। हमारे राज्य में भी राजस्थानी भाषा को संवैधानिक मान्यता दिलवाने हेतु शान्तिपूर्वक आन्दोलन किए जा रहे है।

अध्ययन का उद्देश्य

'भाषावाद' का मुद्दा आजकल भारतीय राजनीति में बहुत अधिक चलन में है। आम चर्चा में यह जितना सरल लगता है बौद्धिक चर्चा में उतना ही कठिन है। इसलिए शोधकर्त्ता ने शोध हेतु इस विषय को चुनते हुए शोध के निम्न उद्देष्य बताये है–

1. भाषावाद का अर्थ एवं प्रकृति को स्पष्ट करना।
2. भाषावाद के सन्दर्भ में लोगों की सोच का पता लगाकर, उसका अध्ययन करना।
3. भारत में प्रचलित विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करना।
4. भाषा एवं राजनीति के अन्तर्सम्बंधों का अध्ययन करना।
5. भाषा के आधार पर उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत की संकल्पना का अध्ययन करना।
6. हिन्दी भाषी एवं गैर–हिन्दी भाषी क्षेत्र के लोगों की राजनीतिक जागरुकता का अध्ययन करना।
7. देश की एकता में भाषावाद की भूमिका का अध्ययन करना।
8. भाषावाद के दुष्परिणामों का अध्ययन करते हुए इसके सार्थक समाधान हेतु सुझाव देना।

अध्ययन पद्धति

शोध विषय 'भारतीय राजनीति में भाषावाद की भूमिका' की प्रकृति सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की है। इसलिए शोधकर्त्ता द्वारा शोध सामग्री का संकलन करते समय प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों से सामग्री ली गई है। प्राथमिक आंकड़ों को इकट्ठा करते समय शोधकर्त्ता द्वारा लोगों से साक्षात्कार, प्रश्नावली तथा अनुसूची के माध्यम से भाषावाद के सन्दर्भ में प्रश्न पूछकर उनकी राय जानी गई है तथा द्वितीयक आंकडें एकत्रित करने के लिए इस विषय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित रचनाओं, विभिन्न आयोगों के प्रतिवेदनों तथा सेमिनारों में प्रस्तुत शोध–पत्रों से सामग्री ली गई है।

साहित्यावलोकन

जब कोई अनुसंधान किया जाता है तो भविष्य को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। वर्तमान में किया गया अनुसंधान ही भविष्य का आधार बनता है। इसी प्रकार वर्तमान में किये जाने वाले अनुसंधान को करने से पूर्व उस विषय पर किये गये अनुसंधानों का सर्वेक्षण करना जरुरी होता है क्योंकि यह वर्तमान अनुसंधान की नींव है। इसलिए वर्तमान शोध विषय से सम्बन्धित प्रकाशित साहित्य का यहां अवलोकन किया गया है यथा–

बिपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी तथा आदित्य मुखर्जी द्वारा लिखित रचना 'आजादी के बाद का भारत' (1947–2007) 2011 में स्वतंत्रता के बाद से सहस्राब्दी के अंत तक के काल पर विचार किया गया है। इस पुस्तक में आजादी के बाद अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझते भारत के सामाजिक व आर्थिक विकास का एक गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लेखकों के अनुसार 1951 से 1964 तक के प्रारम्भिक वर्ष आजाद भारत की उपलब्धियों, भाषाओं व आकांक्षाओं के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण साबित हुए है।

रजनी कोठारी द्वारा लिखित रचना 'भारत में राजनीति : कल और आज' 2005 में लिखा गया है कि भारत में भाषाई विविधता रही है संभवतः प्राचीन काल को छोड़कर हमेशा एक या एक से अधिक कुछ भाषाएँ ऐसी जरुर रही है जिनका प्रयोग पूरे भारत में होता रहा है। सबसे पहले संस्कृत थी, फिर फारसी, फिर उर्दू और उन्नीसवीं सदी से अंग्रेजी और हिन्दी–उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी। आजादी के बाद राष्ट्रभाषा का प्रश्न विवादग्रस्त हो गया।

बिपिन चन्द्र की पुस्तक 'आधुनिक भारत का इतिहास' 2009 में सैनिक तथा कूटनीतिक घटनाओं तथा प्रषासकों और नेताओं की व्यक्तिगत व्याख्या की बजाय सामाजिक शक्तियों, आंदोलनों और संस्थाओं पर बल दिया गया है। इसमें अठारवीं सदी के भारतीय समाज, तत्कालीन अर्थव्यवस्था और राजनीति पर जो चर्चा की गई है उससे उन ऐतिहासिक परिस्थितियों का संकेत मिलता है जिसमें एक विदेशी व्यापारिक कम्पनी ने भारत जैसे विषाल भू–भाग पर कब्जा कर लिया।

रविकांत की रचना 'आज के आइने में राष्ट्रवाद' 2018 में लिखा गया है कि राष्ट्रवाद कोई निश्चित भौगोलिक अवधारणा नहीं है। कोई काल्पनिक समुदाय भी नहीं। यह आपसदारी की एक भावना है, एक अनुभूति जो हमें राष्ट्र के विभिन्न समुदायों और संस्कृतियों से जोड़ती है। भारत में राष्ट्रवाद स्वाधीनता आंदोलन के दौरान विकसित हुआ। इसके मूल में साम्राज्यवाद विरोधी भावना थी।

भारत में भाषा की राजनीति

भारत में भाषा की राजनीति और राजनीति की भाषा परस्पर पर्याय बन गयी है। यद्यपि भाषा की राजनीति से मुक्ति के लिए स्वतंत्रता से पूर्व ही कांग्रेस ने भाषायी आधार पर प्रान्तों के पुनर्गठन की बात स्वीकार कर ली थी तथा देवनागरी हिन्दी को राजभाषा घोषित कर दिया था और साथ ही 15 वर्षों तक के लिए अंग्रेजी के राजभाषा के रूप में प्रयोग की आज्ञा दे दी थी। भारतीय संविधान की रचना के दौरान भी भाषा एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है। भारतीय संविधान एवं संवैधानिक व्यवस्था में भाषा सम्बंधी महत्वपूर्ण तथ्य निम्नांकित है–

1. स्वतन्त्रता से पूर्व सर्वप्रथम 1920 में पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा भाषायी आधार पर प्रान्तों के गठन सम्बन्धी प्रस्ताव को अखिल भारतीय कांग्रेस ने स्वीकार किया था। 1928 की नेहरू रिपोर्ट में भी भाषायी आधार पर ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के पुनर्गठन की मांग को दोहराया गया ।
2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से अनुच्छेद 351 में राजभाषा के सम्बन्ध में प्रावधान किये गये है। संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संविधान के प्रारम्भ में 15 वर्ष तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग संघ के सरकारी कार्यो में यथापूर्व जारी रहेगा। परन्तु इस अवधि के भीतर ही राष्ट्रपति हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी प्रयोग किये जाने का अधिकार प्रदान कर सकते हैं। 15 वर्षों के उपरान्त भी संसद किन्हीं विशिष्ट प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग चालू रखने की अनुमति दे सकती है। किन्तु 1963 में ही संविधान के अनुच्छेद 343 (3) के अधीन राजभाषा अधिनियम के अनुसार 1965 के बाद भी अंग्रेजी अनिश्चित काल तक बनी रहेगी।
3. संविधान के अनुच्छेद 344 के अनुसार राष्ट्रपति को राजभाषा से संबधित विषयों की सलाह देने के लिए राजभाषा आयोग की नियुक्ति का अधिकार है। यह आयोग संविधान के अंगीकृत होने के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति द्वारा स्थापित किया जा सकेगा, किन्तु संविधान के अंगीकृत होने के दस वर्ष बाद राष्ट्रपति इस आयोग की स्थापना के लिए बाध्य है। यह राजभाषा आयोग हिन्दी भाषा के प्रयोग में क्रमिक वृद्धि, अंग्रेजी के प्रयोग को शनैः–शनैः कम करने तथा सत्र सम्बन्धी प्रश्नों में सिफारिश करेगा। संविधान में राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार कर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए एक संसदीय समिति की स्थापना के लिए भी प्रावधान किया गया था जिसकी सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रपति को निर्देश जारी करने का अधिकार दिया गया।

   उक्त प्रावधानों के अनुसार बी.जी.खरे की अध्यक्षता में 1955 में राजभाषा आयोग की नियुक्ति की गयी। राजभाषा आयोग की सिफारिशों के अनुसरण में राष्ट्रपति द्वारा 1960 में निर्देश जारी किये गए ।
4. प्रादेशिक भाषाओं के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 345 के अनुसार प्रत्येक राज्य के विधानमण्डल को यह अधिकार है कि वह राज्य के समस्त सरकारी कार्यो के लिए एक या अधिक भाषाएं अंगीकार कर लें, किन्तु राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में संघ की राजभाषा ही प्राधिकृत मानी जायेगी।
5. कुछ राज्यों में अल्पसंख्यकों के भाषा सम्बन्धी हितों की रक्षा के लिए संविधान में कुछ विशेषउपबन्ध किये गये है। भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रपति द्वारा एक विशेष पदाधिकारी नियुक्त करने का अधिकार है, जिसके प्रतिवेदन को राष्ट्रपति सम्बन्धित संसद के सदनों के समक्ष तथा सम्बन्धित राज्यों की सरकार को प्रेषित करेगा।
6. जब तक संसद द्वारा अन्यथा निर्धारित न किया जाये, तब तक उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों तथा विधानमण्डल की भाषा अंग्रेजी होगी।
7. संविधान का प्रारूप एवं संविधान सभा द्वारा 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत संविधान अंग्रेजी में था। संविधान सभा के अध्यक्ष ने उसका हिन्दी में अनुवाद तैयार करवाया। उस अनुवाद को संविधान का प्राधिकृत पाठ घोषित करने के लिए 58वें संविधान संशोधनअधिनियम 1987 द्वारा अनुच्छेद 394 के संविधान से अन्तः स्थापित किया गया।

इस प्रकार संविधान में राजभाषा के रूप में हिन्दी भाषा को मान्यता देते हुए संघ का कर्त्तव्य विहित किया गया है कि हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु आवश्यक कदम उठाए जाएंगे। साथ ही भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षण की व्यवस्था की गई है। ससंद ने राजभाषा अधिनियम 1963 पारित करके अनुच्छेद 343 (3) में वर्णित अवधि के होते हुए भी अंग्रेजी भाषा को अनिश्चित काल तक प्रयोग किये जाने के लिए उपबन्ध किया है। इस प्रकार हिन्दी को पूर्णरूप से राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की अवधि को अनिशिचत काल तक के लिए बढ़ा दिया गया है।

1967 के "राजभाषा संशोधनअधिनियम" को पारित कर भाषायी नीति में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किया गया है। त्रिभाषा सूत्र अपनाते हुए यह निश्चय किया गया है कि प्रत्येक राज्य अपने राज्य की भाषा में काम करने के लिए स्वतंत्र होगा। राज्य के विद्यालयों में पढाई का माध्यम उस राज्य की भाषा होगी। अन्तर्राज्यीय पत्र व्यवहार में सामान्यतः अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होगा और यदि पत्र व्यवहार हिन्दी में होगा तो उसके साथ अंग्रेजी अनुवाद आवश्यक रूप से संलग्न होगा। संविधान निर्माण के समय किये गए निर्णय से हटकर यह निश्चय किया गया कि केन्द्र में और संसद में अंग्रेजी भाषा में कामकाज चलता रहेगा। सरकारी सेवाओं की परीक्षाएं हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में लिए जाने तथा हिन्दी के क्रमिक विकास का निर्णय लिया गया।

उक्त त्रिभाषा सूत्र की स्थापना करने वाले 1967 के राजभाषा संशोधन अधिनियम का उत्तर के हिन्दी भाषी

राज्यों तथा दक्षिण के अहिन्दी भाषी राज्यों ने विरोध किया। 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत घोषित किया गया कि त्रिभाषा फार्मूले को पुरजोर तरीके से अमल में लाया जाए। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने भी इस बात पर बल दिया कि त्रिभाषा फार्मूले को अमल में लाया जाए। एक बहुभाषायी राष्ट्र में विविध भाषा–भाषी समुदायों में सामन्जस्य के प्रावधानों के बावजूद भाषा का प्रश्न राजनीतिक प्रश्न बन गया।

भारत की स्वतंत्रता के सात दशकों में भारत की राजनीति में भाषा से जुड़ी राजनीतिक समस्याओं में शामिल हैं– हिन्दी के विरोध की नीति, भाषायी आधार पर राज्यों का पुनगर्ठन, भाषा के आधार पर उत्तर एवं दक्षिण की संकुचित भावनाएं, भाषा के आधार पर दबाव गुटों का उदय, अन्य भाषाओं की मान्यता की मांग, भाषा के आधार पर चुनावी राजनीति, भाषायी अल्पसंख्यकों का संरक्षण, भाषायी आधार पर संकीर्ण भावनाएं एवं राष्ट्रीय एकता का विरोध आदि समस्याएँ प्रमुख हैं। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में राजभाषा के रूप में हिन्दी का विरोध, भाषा के आधार पर राजनीतिक दलों द्वारा संकीर्ण राजनीतिक हितों का प्रश्न देना एवं भाषायी राज्यों के विवाद आदि ने राष्ट्रीय एकीकृत ढांचे को चुनौती उपस्थित की है।

राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राजभाषा आयोग के तमिल भाषी एवं बंग्ला भाषी सदस्यों द्वारा आयोग की अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को सरकारी भाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने को "अहिन्दी भाषी जनता पर हिन्दी थोपना" माना। कालान्तर में हिन्दी के विरोध की राजनीति ने उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत को दो भागों में विभक्त किया। हिन्दी के विरोध की नीति की स्थिति यह है कि 27 मई 2017 को नरेन्द्र मोदी सरकार द्वारा जारी परिपत्र में सभी मंत्रालयों, पीएसयू और बैंकों को अपने मीडिया अकाउण्ट्स पर हिन्दी को प्राथमिकता देने की बात कहे जाने पर अनेक राजनीतिक दलों द्वारा इस निर्णय का विरोध किया गया।

भारत में भाषा एवं राजनीति में अन्तः क्रिया

भारतीय राजनीति में भाषा के प्रश्न का केन्द्र बिन्दु राजभाषा और क्षेत्रीय भाषा का द्वन्द तथा अंग्रेजी का बने रहना हैं। हिन्दी देश की अधिकांश जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। यहां हिन्दी में उर्दू और हिन्दुस्तानी भी शामिल है। देश की जनसंख्या का सर्वाधिक प्रतिशत लगभग 42 करोड (45 प्रतिशत) हिन्दी में बोलने या जानने वाले वाले है। अतः हिन्दी को संघ की राजभाषा का दर्जा दिया गया है, किन्तु प्रादेशिक भाषाई समूहों की सुविधा के लिए हिन्दी से भिन्न अन्य प्रादेशिक भाषाओं को मान्यता प्रदान कर आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया हे। ये भाषाएँ हैं – असमिया, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उडिया, पंजाबी, संस्कृत, सिन्धी, तमिल, तेलगू, उर्दू, डोगरी, मैथिली, संथाली एवं बोड़ो। संविधान के अनुसार 8 वीं अनुसूची के बाहर जाकर कोई भी सरकार संवैधानिक आदेश नहीं दे सकती। 8वीं अनुसूची में दर्ज 22 भाषाओं में से कोई भाषा राज्य चुन सकते हैं।

त्रिभाषा सूत्र का विरोध करते हुए भाषायी आधार पर राजनीतिक आन्दोलनों का संचालन किया गया। एक ओर, उत्तर भारत के राज्यों– उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं महाराष्ट्र में अंग्रेजी विरोधी प्रदर्शन एवं उपद्रव हुए, दूसरी ओर दक्षिण के राज्यों में तमिलनाडु से प्रारम्भ हुआ हिन्दी विरोधी आन्दोलन आन्ध्र एंव मैसूर तक प्रसारित हुआ।

भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के मसले ने भाषायी विवादों एवं तनावों को जन्म दिया। भारत में ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भी भाषायी आधार पर राज्यों का गठन किया जाता था। सर्वप्रथम 1912 में भाषायी आधार पर तीन राज्यों बिहार, उडीसा (वर्तमान में ओडिशा) तथा असम का गठन किया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् भाषा के आधार पर राज्यों के सीमाकंन की मांग की जाती रही है। पं. जवाहर लाल नेहरू को 50 के दशक में तेलगू नेता पोट्टी श्रीरामूलू के नेतृत्व में तेलगू भाषी लोगों के अलग राज्य बनाने की मांग को लेकर चले आन्दोलन के दौरान किये गए आमरण अनशन से उनकी मृत्यु से उपजे असन्तोष से विवष होकर भाषा के आधार पर पृथक राज्य आन्ध्र प्रदेश का गठन करना पड़ा। 1 अक्टूबर 1953 को भाषायी आधार पर गठित पहले राज्य आन्ध्रप्रदेश राज्य के गठन के कारण भारत के अन्य भाषा–भाषियों की मांगो को देखते हुए 1953 में न्यायमूर्ति फजल अली की अध्यक्षता में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग की अनुशंसा के आधार पर 1956 में भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के बावजूद भाषा के प्रश्न को लेकर तनाव मौजूद रहा । भाषा के आधार नवीन राज्यों की स्थापना की नित नवीन मांगे की जाती रहीं है। भाषा के मुद्दे पर असन्तोष के कारण 1960 में बम्बई को गुजरात एवं महाराष्ट्र में, 1966 में पंजाब को हरियाणा व पंजाब में विभक्त करना पड़ा। भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के दौरान राज्यों के आपसी विवादों ने उग्र रूप धारण कर लिया। पंजाबी भाषा के आधार पर पंजाब के पृथक सूबे की मांग को लेकर मास्टर तारा सिंह के नेतृत्व में आन्दोलन तथा असम में बंगाली एवं असमी भाषा को लेकर आन्दोलन ने राष्ट्रीय एकता को चोट पहुंचाई । नवीन भाषायी राज्यों के निर्माण के बाद इन राज्यों में भाषायी अल्पसंख्यकों के संरक्षण की समस्या भी उत्पन्न हुई। आज भी भाषायी आधार पर पृथक राज्यों की मांग विद्यमान है।

भाषा के आधार पर राजनीतिक दलों की राजनीति ने स्थानीयता की संकीर्ण मनोवृत्ति को बढ़ावा दिया। जैसे – तमिलनाडु में द्रविड मुनेत्र कडगम ने 1965 में एक विशाल भाषा आन्दोलन को प्रायोजित किया। अंग्रेजी को समाप्त कर हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने के विरोध में यह आन्दोलन दक्षिण भारत के राजनीतिक दलों का आन्दोलन बन गया। 1967 के चुनाव द्रमुक ने भाषा आन्दोलन की पृष्ठभूमि में लड़कर राजनीतिक स्वार्थ सिद्व करने का प्रयास किया। असम में असमगण परिषद ने गैर

असमियों के विरूद्ध आन्दोलन इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। भाषा के आधार पर राजनीति में नए दबाव गुटों का उदय हुआ है। भाषायी राज्यों के विवाद न केवल स्थानीय स्तर पर मतभेद, संघर्षो को जन्म देते है बल्कि राष्ट्रीय एकता को भी चोट पहुंचाते है। असम में वर्षो से चला आ रहा बंगाली और असमी भाषा विवाद ने राज्य में उग्रवाद को पनपाने में बडा योगदान दिया है। भाषा के आधार पर अस्तित्व में आए दबाव गुटों ने कालान्तर में राजनीतिक दलों का रूप लेकर सत्ता राजनीति में अपनी हिस्सेदारी का दावा किया है, जैसेः– भाषायी आधार पर गठित दबाव समूह– संयुक्त महाराष्ट्र समिति एवं महागुजरात जनता परिषद।

भाषावाद के दुष्परिणाम

स्वतंत्रता के दशकों उपरान्त भारत में भाषावाद के तनाव के कारण निम्नांकित संकट उत्पन्न हुए है :–

1. भाषा के आधार पर नये राज्यों की मांग तथा भारतीय शासन को चुनौती देने वाले आन्दोलनों ने देश की एकता व अखण्डता को चोट पहुँचाई है। देश के विविध प्रान्तों में भाषागत विद्वेष ने खेदजनक स्थितियां उत्पन्न की है। दुर्भाग्य से भारत के अधिकांश प्रांतों में ऐसा भाषागत विद्वेश मौजूद है। असम में असमियों के संघर्ष, महाराष्ट्र में मराठियों के अधिकार, पंजाब में पंजाबी भाषियों का देश की राजभाषा हिन्दी का विरोध–ऐसे सभी विरोधों एवं भाषायी अस्मिता की पहचान के आन्दोलनों ने राष्ट्रविरोधी आन्दोलनों का रूप ले लिया है।
2. भाषागत राजनीति में भाषा एवं क्षेत्रवाद के कारण ही 'धरती–पुत्र' की धारणा का प्रचलन हुआ, जिसके तहत राज्य के संसाधनों, रोजगार के अवसरों का प्रादेशिक भाषा–भाषियों के पक्ष में आवंटन तथा अन्य भाषा–भाषियों के प्रति असहिष्णुता की प्रवृति ने भाषागत एवं सरकारी नौकरियों में भर्ती के मुद्दों को लेकर देश के विभिन्न राज्यों में विविध भाषा–भाषियों में संघर्ष, असम एवं बिहारियों के मध्य भाषा के मुद्दे को लेकर टकराव आदि की घटनाएं स्थानीयता की संकीर्ण भावना की परिचायक है। भाषायी विद्वेष के कारण पिछले कुछ समय से आधुनिक एवं विकसित माने जाने वाले शहरों में भी अन्य राज्यों के छात्रों, निवासियों पर हमले एवं अपराध की घटनाएं सामने आई हैं।
3. भाषावाद के कारण ही देश की भाषा हिन्दी के विरोध की राजनीति के आधार पर कुछ राजनैतिक दलों ने अपने अस्तित्व को कायम रखा है। दरअसल हिन्दी भाषा का किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा से कोई विरोध नहीं है, लेकिन स्वतंत्रता के सात दशकों के उपरान्त हमारे देश की स्वभाषा के अस्तित्व पर क्षेत्रीय भाषाओं द्वारा विरोध एवं अंग्रेजी के वर्चस्व से संकट उत्पन्न हो जाना खेदजनक हैं हमारी शासनिक संस्थाओं, सर्वोच्च न्यायालय, संसद सहित उच्च शिक्षा के कार्य हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी में प्रचलित होते है। जब कभी हिन्दी भाषा के विकास, गौरव अथवा प्रचलन की चर्चा होती है तब उसे संकीर्ण एवं क्षेत्रीय भाषाओं का विरोध मान लिया जाता है। भाषा को लेकर वर्षो पुराने असंतोष ने नित–नवीन रूप व्यक्त किये है और इनमें हिन्दी का विरोध सबसे प्रबल है।

स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति में भाषा के नवमूलक प्रश्न को राजनीतिक स्वार्थो से प्रेरित कारकों एवं तत्वों ने प्रोत्साहित किया है। देश की राजनीति में राजभाषा के प्रश्न अथवा प्रादेशिक भाषाओं की राजभाषा को चुनौती तथा भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन ने मुद्दों का कार्य किया है, बहुभाषी राष्ट्र के रूप में भाषाओं का वैविध्य भारत का अनूठा लक्षण है, जिसे दलीय राजनीति से ग्रस्त राजनीतिक दलों ने परस्पर अर्न्तकलह का अभियन्त्र बना दिया है।

प्रमुख सुझाव

भाषा के आधार पर उग्र आन्दोलन राष्ट्रीय एकता व अखंडता के लिए एक चुनौती है इनके शान्तिपूर्वक हल निकालने के लिए शोधकर्त्ता द्वारा निम्नलिखित सुझाव दिये गये है यथा –

1. भाषायी विद्वेष एवं आन्दोलन अक्षम्य हो। भाषागत घृणा देशद्रोह से कम नहीं है। क्योंकि इससे देश अन्दर से कमजोर होता हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि भारतीयों के बीच भाषा प्रान्त के आधार पर दूरियां, विभेद पैदा करने की कोशिषों को सिरे से खारिज किया जाये। हिन्दी को भारत की राजभाषा एवं सम्पर्क भाषा के रूप में मान्यता के मुद्दे पर किसी प्रकार की चर्चा की आवश्यकता नहीं रह गई है। अहिन्दी भाषी राज्यों को यह तथ्य यथाशीघ्र स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जाए।
2. भारत में सांस्कृतिक विविधता एवं भाषाओं की विविधता उसकी विलक्षणता एवं विशेष पहचान है। देश में 1658 दर्ज भाषाएँ है और 22 भाषाएँ 8 वीं अनुसूची में दर्ज है। यह भाषाई विविधता सांस्कृतिक गौरव है। भाषा के आधार पर राजनीतिक दलों का बहिष्कार किया जावे तथा ऐसे सभी तत्वों को शासनिक संस्थाओं के माध्यम से हतोत्साहित किया जाए।
3. भाषायी आदान–प्रदान हेतु सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक गतिविधियों का विस्तार किया जाए।
4. पर्यटन को बढ़ावा देकर हिन्दी की आवश्यकता को व्यावहारिक बनाया जाए।
5. त्रिभाषा फॉर्मूला व्यवस्थित रूप में केन्द्र व राज्यों के स्तर पर सुचारु रूप से लागू किया जाए।
6. प्रादेशिक भाषाएँ भी हिन्दी के प्रसार के लिए सहायक हो सकती है, उसी दिषा में उनका भी विस्तार किया जाए।
7. राजनीतिक संकीर्णताएँ समाप्त कर, राष्ट्रीय हित में भाषावाद की समस्या का हल ढूँढा जाए।
8. आंग्ल भाषा का प्रशासनिक प्रयोजनार्थ एवं अनुवाद की सीमाओं तक ही उपयोग हो।

9. भाषाएँ सम्प्रेषण का माध्यम हैं, ये परस्पर जोड़ती है, तोड़ती नहीं – यह भाव देशवासियों के मन में जगाना होगा।
10. हिन्दी के सुग्राही, मानक एवं बोधगम्य लोकप्रिय रूप के प्रचार–प्रसार हेतु सुनियोजित प्रयास किये जाएं। विविध राज्यों के मध्य सांस्कृतिक आदान प्रदान युवा खेलों को प्रोत्साहन एवं क्षेत्रीय भाषाओं के वैविध्य का विस्तार एवं सम्पर्क सूत्रता से भाषावाद की अपेक्षा की जा सकती है।
11. भाषा के प्रश्न को राजनीतिक स्वार्थो से दूर रखा जाए। सरकारिया आयोग ने भी भाषा के प्रश्न का राजनीतिकरण करने के विरूद्ध सावधान किया है, क्योंकि इससे भारतीय जनतंत्र को जड़ से नष्ट करने की संभावनाएं है।

भाषावाद से जुड़ा एक मुद्दा राष्ट्रभाषा हिन्दी के अस्तित्व एवं विकास का भी है। दरअसल जिस हिन्दी को आजादी के शुरूआती दशकों में ही राष्ट्रभाषा के स्तर पर प्रतिष्ठित हो जाना चाहिए था वह संवैधानिक संकल्पनों के बावजूद सरकारी कामकाज और व्यवहार के स्तर पर निरन्तर हाशिये पर खिसकती चली गयी। दक्षिण भारत के राज्यों सहित कुछ अन्य प्रान्तों ने 50 एवं 60 के दशक में हिन्दी विरोध की राजनीति को अपनाते हुए भारत के संघीय ढांचे को चुनौती प्रस्तुत की है। दरअसल गैर हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारों एवं राजनीतिक दलों ने स्वार्थवश हिन्दी भाषा को थोपने के नाम पर अपने प्रान्तों की जनता के मन में हिन्दी विरोध के द्वेष को तथा हिन्दी विरोध की भावनाओं को गहरे स्थापित कर दिया और प्रान्तीयता एवं भाषा की पहचान के नाम पर गैर भाषायी लोगों के प्रति कभी न मिटने वाला आक्रोश एवं अनावश्यक घृणा को जन्म दिया है। अनेक देशों के राजनेता राजनयिक मुलाकातों के वक्त अपनी राष्ट्रभाषा का इस्तेमाल और दुभाशिए के जरिए बातचीत करते हैं। यदा–कदा केवल विदेशी नेताओं के साथ हिन्दी में बात करने के कुछ अवसरों से राष्ट्रभाषा हिन्दी को उसकी वास्तविक जगह दिलाने का मकसद पूरा नहीं हो जाएगा। यह आवश्यक है कि हर दिन के प्रषासकीय कामकाज में हिन्दी को बढ़ावा दिया जाये। जून 2014 में गृह मन्त्रालय के भाषा विभाग द्वारा सभी मंत्रालयों, विभागों को सोशलमीडिया पर हिन्दी प्रयोग के लिए सर्कुलर जारी करने पर अनेक राज्यों ने हिन्दी थोपने के नाम पर विरोध किया । हिन्दी का देश की किसी क्षेत्रीय भाषा से वैर नहीं है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रभाषा महत्वपूर्ण है तथा आठवीं अनुसूची में शामिल अन्य क्षेत्रीय भाषाएं भी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

राष्ट्रभाषा को गरिमा के स्तर पर स्थापित करने के लिए बोली एवं कामकाज के स्तर पर अंग्रेजी के प्रयोग को श्रेष्ठता एवं हिन्दी के प्रचलन को हीनता मानने की अथवा अंग्रेजी के प्रयोग को विद्वता का सूचक माने की मनोग्रंथि से निकलने की आवश्यकता है। सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर इसके उपयोग को बढ़ावा देने की दृढ़ इच्छा शक्ति, संचार के नवीन माध्यमों में हिन्दी का प्रयोग, प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा में हिन्दी को प्रोत्साहन, विविध अनुशासनों में हिन्दी के शोध को बढावा, ऐसे तमाम अन्य उपाय अपनाये जा सकते हैं जो न सिर्फ हिन्दी को सही अर्थो में राष्ट्र भाषा का दर्जा दिला पाएँगे। बल्कि भाषा के आधार पर पहचान एवं भाषावाद आधारित राष्ट्रविरोध पृथकतावाद के तत्वों को नियंत्रित कर पाएँगें। हिन्दी भाषी लोग अन्य भारतीय भाषाओं को सीखना शुरू कर दें तो हिन्दी पूरे राष्ट्र की कण्ठहार बन जायेगी। अतः भाषा के प्रश्न पर विवेकीय एवं उदारवारी दृष्टिकोण से भारतीय राजनीति में भाषावाद को नियंत्रित किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चन्द्र, बिपिन ; मुखर्जी, मृदुला ; मुखर्जी, आदित्य; 'आजादी के बाद का भारत (1947–2007)' हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2011

कोठारी, रजनी; 'भारत में राजनीति : कल और आज', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005

चन्द्र, बिपिन; आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, दिल्ली, 2009

रविकांत, आज के आइने में राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2018

शर्मा, जी.एल; सामाजिक मुद्दे, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2015

सईद, एस. एम. ; भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, 2009